~~Chapter~~ -
Conclusion

उपसंहार

उपसंहार

साहित्य की अधिकांश विधाओं में व्यंग्य का प्राधान्य किसी न किसी रूप में रहता ही है। व्यंग्य अपनी प्रस्तुति और शिल्प की विशिष्टता के कारण एक स्वतन्त्र विधा के रूप में प्रतिष्ठापित हो चुका है। मुख्यत: काव्य से प्रारम्भ यह व्यंग्य गद्य की अधिकांश विधाओं में भी प्रस्फुटित हुआ। नाटक, एकांकी, कहानी, निबन्ध, आलोचना आदि में इसकी विशिष्टता स्वभावतः ध्यानाकर्षित करती ही है, किन्तु उपन्यास साहित्य में व्यंग्य की सन्निहिति ने कथाकार के कथ्योद्‌देश्य को बड़े ही सशक्त रूप में प्रस्तुत करने की दिशा में प्रेरित किया है।

प्रस्तुत 'शोध-प्रबन्ध' में आंचलिक उपन्यासों के सन्दर्भ में व्यंग्य की विविध प्रभावान्वितियों को परिलक्षित किया गया है; हालांकि आंचलिक उपन्यासों का वर्ण्य-विषय किसी विशिष्ट जनपद या प्रादेशिक (क्षेत्रीय) परिवेश तक ही सीमित रहा है किन्तु इस परिवेश में व्याप्त राजनीतिक, सामाजिक,धार्मिक एवम् सांस्कृतिक सन्दर्भो में परिव्याप्त प्रदूषणों एवम् आचरणों की धृष्टता को किसी व्यंग्य-कथ्य के माध्यम से अधिक सक्षम रूप में उद्‌घाटित किया जा सकता है।

'व्यंग्य' एक ऐसा प्रहारक आयुध है जो किसी दवा के इन्जेक्शन की तरह बिना दर्द किये शरीर के अन्दर अत्यन्त तीक्ष्ण औषधियों को प्रविष्ट करा देता है और फिर भी औषधियाँ रक्त-शिराओं में प्रवाहित होकर सम्पूर्ण शारीरिक अवयवों को आन्दोलित कर देती है। आंचलिक उपन्यासों के कथाक्रम में व्यंग्य इसी तरह के एक हथियार के रूप में प्रयुक्त हुआ है जो कथाकार की सपाटबयानी में भी इतर सन्दर्भों को प्रस्तुत करते हुए अपने लक्ष्य को सामने रख देते है। अधिकतर आंचलिक उपन्यास जनपद अथवा अंचल-विशेष की प्रदूषित राजनीति को, भ्रष्ट नेतृत्व के परिव्याप्त दोषों को, सामाजिक कुरीतियों को, अन्धविश्वासों, धार्मिक संकीर्णताओं तथा असंतुलित टूटती व्यवस्थाओं को, पारम्परिक जाराशाही को, ठकुरैती को तथा हाकिम-हुक्कामों के बदचलन एवं घटिया व्यक्तितत्व

को उजागर करते है।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के अधिकांश उपन्यासों में आंचलिक व्यवस्था की टूटती प्रतिष्ठा को, ग्राम्यांचलो में स्थापित पंचायतों की धींग-धसेड़ी को, असीमित लोगों पर हो रहे दमन एवम् संत्रास को व्यंग्यात्मक कथ्यों द्वारा ही धारदार बनाकर प्रस्तुत किया गया है। आंचलिक उपन्यासों में किया गया व्यंग्य जहाँ एक ओर कथ्य की प्रभान्वितियों को परिवर्धित करता है, वहीं दूसरी ओर इससे कथाकार का निहित उद्देश्य भी अधिक सक्षम रूप में सामने आता है। पाठक वर्ग की अभिरूचि तो बढ़ती ही है। साथ ही कथागत संवादों और कथ्यों की रोचकता भी उपन्यास को अपेक्षाकृत अधिक आकर्षक बना देता है।

आंचलिक उपन्यासों में 'व्यंग्य' तटस्थ रूप से सन्दर्भित विषय को विवेचित करता है। किन्तु कहीं-कहीं पूर्वाग्रह उसके विशिष्ट राजनैतिक चिन्तन को जब अपने स्थापित मूल्यों के तहत प्रस्तुत करता है तो 'व्यंग्य' 'सहज व्यंग्य' न होकर गाली-गलौज की सीमा तक आक्रामक आक्षेप बन कर रह जाता है। इस प्रकार के व्यंग्य 'हरिशंकर परसाई' के कथ्यों में देखे जा सकते है।- "मूर्ख, तू क्या होटल बिठाना चाहता है? देवता सोमरस पीते थे। वही सोमरस यह मदिरा है। इसमें तेरा वैष्णव धर्म कहाँ भंग होता है। सामवेद में ६३ श्लोक सोमरस अर्थात् मदिरा की स्तुति में है। तुझे धर्म की समझ हैं या नहीं?"[१]

"शराब, गोश्त, कैबरे और औरत। वैष्णव धर्म बराबर निभ रहा है। इधर यह भी चल रहा है। वैष्णव ने धर्म को धन्धे से खूब जोड़ा है।"[२] प्रस्तुत 'शोध-प्रबन्ध' में अनेक सन्दर्भो द्वारा यह स्पष्ट किया जा चुका है कि, व्यंग्य-विधा ने हिन्दी-गद्य साहित्य को एक नया मोड़ दिया है। वैसे तो नाटक, एकांकी, कहानी, आलोचना, निबन्ध, लेख आदि सभी विधाओं में व्यंग्य के तेवर देखे जा सकते हैं, किन्तु उपन्यास में वर्णनात्मक विस्तार की अधिक संभावनाएँ होने के कारण रचनाकार को पूरा अवसर

---

१. डॉ. सुदर्शन मजीठिया, बालेन्दु शेखर तिवारी (सं.), 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य: सृजन की यात्रा, पृष्ठ-४७

२. वही, पृष्ठ-४७

मिलता है कि वह अपने विशिष्ट भाषिक प्रयोगों से कथावस्तु को प्रभावक भूमिका प्रदान करे। यद्यपि 'व्यंग्य' भाषा का ही एक धारदार हथियार है जो कथ्य की विशिष्ट प्रस्तुति के लिए प्रयुक्त होता है, किन्तु कथानक में पात्रों के स्वरूप-निर्धारण, कथा-प्रस्तुति की विभिन्न भंगिमाओं तथा चरित्रों का परोक्ष व्यक्तितत्व भी व्यंग्यात्मक अभिप्रेत को प्रस्तुत करने में समर्थ होता है।

आंचलिक उपन्यासों की विशिष्ट भूमिका में जब हम किसी निश्चित क्षेत्र, जनपद अथवा अंचल के सांस्कृतिक परिवेश से जुड़ते हैं तो उस अंचल का सम्पूर्ण परिवेश हमारे सामने प्रस्तुत होता है। सपाटबयानी या वर्णनात्मकता, कथा को अग्रसर तो करती है किन्तु यदि कथ्य की वक्रता या उसमें सन्निहित व्यंग्य अपने प्रभावक रूप में समाविष्ट न हो तो कथानक की प्रभावान्विति में बहुत अन्तर पड़ जाता है।

यों तो फणीश्वरनाथ 'रेणु' को ही आंचलिक उपन्यासों का कर्णधार स्वीकारा गया है किन्तु कुछ विद्वान शिवपूजन 'सहाय' के उपन्यास 'देहाती दुनिया' को प्रथम आंचलिक उपन्यास मानते हैं, जिसमें लेखक स्पष्ट रूप से घोषित करता है- "मै ऐसे ठेठ देहात का रहने वाला हूँ, जहाँ इस युग की नयी सभ्यता का बहुत ही धुंधला प्रकाश पहुंचा है। वहाँ केवल दो ही चीजें प्रत्यक्ष देखने में आती हैं- "अज्ञानता का घोर अन्धकार और दरिद्रता का तांडव नृत्य, वही पर मैंने जो कुछ स्वयं देखा-सुना है, उसे यथाशक्ति ज्यों का त्यों उसमें अंकित कर दिया है।"[1] शिवपूजन 'सहाय' कृत 'देहाती दुनिया' आंचलिक उपन्यासों का श्रीगणेश तो करता है किन्तु व्यंग्य के सन्दर्भ में यह विशेष उल्लेखनीय नहीं है। अस्तु इसे प्रस्तुत 'शोध-प्रबन्ध' की सीमान्तर्गत नहीं लिया गया है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' द्वारा लिखित 'मैला आंचल' आंचलिक उपन्यासों के सन्दर्भ में तो सीमाचिन्ह निर्धारित करता ही है किन्तु व्यंग्य की दृष्टि से भी यह कृति अत्यन्त उल्लेखनीय है।

सन् १९५४ ई. में प्रकाशित उपन्यास 'मैला आंचल' के प्रथम

---

१. शिवपूजन सहाय रचनावली, पृष्ठ-४१५

संस्करण की भूमिका में फणीश्वरनाथ 'रेणु' द्वारा अपने उपन्यास के वैशिष्ट्य की उद्घोषणा- 'यह है, मैला आंचल एक आंचलिक उपन्यास' के पश्चात् हिन्दी के उपन्यास जगत में 'आंचलिक उपन्यास' के तत्वत: प्रतिपादनों का होड़ आरम्भ हो गया। उपन्यासों के आंचलिक तत्वों की स्थापना के साथ-ही-साथ विवाद भी जन्म लेने लगे। 'मैला आंचल' से पहले लिखे गये उपन्यासों में भी उक्त तत्वों को ढूंढा जाने लगा। परिणामत: पूर्वरचित अनेंक उपन्यासों को आंचलिकता की परिधि में स्थान दिया गया। मैला आंचल से पहले नागार्जुन द्वारा लिखे गये उपन्यासों 'रतिनाथ की चाची', 'बाबा बटेसर नाथ', 'बलचनमा' आदि को भी 'आंचलिक उपन्यास' की मान्यताएँ प्राप्त हुई।

प्रेमचन्द ने अपने कथापात्रों से आदर्शवान बने रहने का आग्रह रखा है किन्तु 'रेणु' ने अपने पात्रों को आदर्शोन्मुख रहते हुए भी परिस्थितियों के हवाले कर दिया है। रेणु स्वयं एक ऐसे कर्मठ योगी रहे हैं जो जीवन के विषम अनुभवों को आत्मसात् करते रहे और प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझते रहे। रेणु का यह जहर उनकी औपन्यासिक कृतियों में व्यंग्य के माध्यम से प्रगट होकर पाठकों के मर्मस्थल को वेध देता है। 'मैला आंचल' में रेणु ने मिथिला में होते आ रहे निरन्तर बदलाव एवम् परिस्थितियों की विषमता को सूक्ष्मता से रेखांकित किया है। विगत महायुद्धों के अवशिष्टों के प्रभाव, स्वाधीनता आन्दोलनों, स्वार्थपरताओं तथा प्रशासनिक अन्याय और अनीतियों को कहीं सपाटबयानी के साथ तो कहीं कटु व्यंग्यों के साथ प्रस्तुत किया गया है। यह उपन्यास अन्य स्थापित उपन्यासों से सर्वथा पृथक भूमिका की प्रस्तुति करता है। 'कब तक पुकारूँ', 'अलग-अलग वैतरणी', 'सोनामाटी,' 'लोक-परलोक', 'लोक-ऋण', 'पानी के प्राचीर', 'चिट्ठीरसैन', 'हिरना सांवरी' आदि की कथा- प्रस्तुतियाँ 'रेणु' के 'मैला आंचल' से एक निश्चित अन्तराल अवश्य स्थापित करते हैं। मिथिला का 'मेरी गंज' जनपद सम्पूर्ण भारतीय गाँवों का प्रतीक बनकर उभरा है जिसमें जमींदारों द्वारा शोषण, आर्थिक विषमता, जातीयता, भूमि की समस्या आदि और सामाजिक, राजनीतिक एवम् धार्मिक मूल्यों

के निर्माण एवम् विध्वंस के टकराहट की गूँज सुनायी पड़ती है। इस उपन्यास में 'मेरी गंज' के माध्यम से इतने विशाल चित्रफलक पर सामाजिक, राजनीतिक एवम् धार्मिक विद्रूपताओं की अभिव्यक्ति हुई है; कि वह एक काल-विशेष का सजीव एवम् प्रभावशाली चित्र उपस्थित करने में सफल हो जाता है। भारतीय देहात के मर्म का इतना सरस और भाव-प्रवण चित्रण हिन्दी में सम्भवत: पहले कभी नहीं हुआ था। 'परती: परिकथा' का कथासूत्र भी लगभग 'मैला आंचल' जैसा ही है। इसमे लेखक की दृष्टि 'मैला आंचल' की अपेक्षाकृत अधिक संतुलित तथा निरपेक्ष है। इस उपन्यास के अनेक यथार्थवादी पात्रों के माध्यम से पुन: ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है। स्वातंत्र्योत्तर भारत के संक्रमणकालीन गाँव का प्रतिनिधि है 'परानपुर' जो भीतर से टूट रहा है और बाहर से आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक दबाव उसके आंतरिक जीवन को संक्रमित कर रहे हैं। भावों के अनुरूप इस उपन्यास में भाषा का प्रयोग रेणु की क्षमता का प्रमाण है कि उनमें प्रादेशिक शब्दों में इतनी सामर्थ्य भरने की शक्ति है। 'जुलूस' का कथानक गोड़ियार गाँव की 'नवीननगर' कालोनी पर केन्द्रित है जिसमें पूर्वी बंगाल से आए शरणार्थियों की कथा है। इस उपन्यास की घटनाएँ नितान्त स्वाभाविक प्रतीत होती हैं। इस रचना में तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोना आदि की चर्चा, कैम्प में रहने वाली शरणार्थी युवतियों के प्रति मनचलों के व्यवहार तथा स्त्रियों के सौदे तक की घटनाओं का चित्रण किया गया है। लेखक को लगता है कि, अंचल की अधिकतर समस्याएँ राष्ट्र-प्रेम तथा विश्व-बंधुत्व की भावना से सुलझायी जा सकती है। रेणु ने विभिन्न विद्रूपताओं पर व्यंग्य के तीक्ष्ण बाणों से कुठाराघात किया है।

'रेणु' के समानान्तर ही नागार्जुन का व्यंग्य-प्रदान भी अपनी अहम् महत्ता रखता है। जहाँ कथाकार अपने व्यंग्यात्मक कथ्यों द्वारा सामाजिक, धार्मिक विषमताओं , राजनीतिक विषंगतियों एवं पारिवारिक अन्तर्क्लेशों को कथांकित करता है। रेणु और नागार्जुन में भाषिक समानता भी इसलिए है कि दोनों ही स्थापित कवि भी हैं; दोनों ग्राम्यांचलों के स्वयंभोगी जीवन अनुभव रखते है तथा भाषिक अभिव्यंजना में भी दोनों समर्थ

हस्ताक्षर है। बलचनमा, नयी पौध, बाबा बटेसरनाथ, वरूण के बेटे तथा दुखमोचन जैसे अपने आंचलिक उपन्यासों में नागार्जुन ने बड़ी ही सहज भाषा में अपनी तीक्ष्ण व्यंग्य-बाणों की वर्षा की है। नागार्जुन के सभी उपन्यास बिहार के दरभंगा जिले के आसपास के आंचलिक ग्रामीण परिवेश को उद्घाटित एवम् कथांकित करते हैं, जहाँ परिवर्तित परिस्थितियों ने लोक-संस्कृति के कर्णधारों को किंकर्तव्यविमूढ़ बना दिया है। 'बलचनमा' के सन्दर्भ में यह उक्ति बड़ी सार्थक है- ''अर्थव्यवस्था के असंतुलित धरातल पर खड़े सामान्य ढाँचे की अमानुषिकता नागार्जुन की यथार्थपरक पकड़ में इस रूप में उजागर होती है कि सहृदय की संवेदना उभर कर 'बलचनमाओं की पीड़ा' से तादात्म्य स्थापित करती है तथा चौधरियों की काली करतूतों के प्रति घृणा और इस सड़ी व्यवस्था के प्रति विद्रोह जगाती है''[१]

हालांकि नागार्जुन का व्यंग्य साम्यवादी व्यवस्था का पक्षधर है, किन्तु उसका प्रगतिवादी स्वार्थ दुराग्रह तक अपने वैचारिक निर्णय को जब स्थापित करता है तो कथाक्रम में वह एक आरोपण-रूप भी प्रतीत होता है। प्रस्तुत औपन्यासिक कृतियों में नागार्जुन की व्यंग्य-चेतना अपनी विशिष्ट पहचान अवश्य प्रस्तुत करती है जिसे इस 'शोध-प्रबन्ध' में यथावसर व्याख्यायित किया गया है।

आंचलिक उपन्यासों के इसी क्रम मे उदयशंकर 'भट्ट' का कृतित्व भी उल्लेखनीय है जो अपने कथ्यों की व्यंग्यात्मक प्रहार-शक्ति के लिए विख्यात रहे हैं। 'सागर लहरें और मनुष्य' तथा 'लोक-परलोक' में उनके व्यंग्य-तेवर सर्वत्र दिखायी पड़ते हैं। इनका मूल स्वर- व्यक्ति, विशेषकर 'नारी की स्वतंत्रता है। नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण सहानुभूति पूर्ण है और उनकी स्वतंत्रता का स्वर उनकी रचनाओं में सशक्तता के साथ मुखरित हुआ है। यथार्थवादी चित्रण इनके उपन्यासों की प्रमुख विशेषता है। कुछ विद्वानों ने 'सागर लहरें और मनुष्य' की आंचलिकता पर प्रश्नचिन्ह भी लगाया है।

---

१. आंचलिकता और हिन्दी उपन्यासः डॉ. नगीना जैन

'लोक-परलोक' में तीर्थग्राम 'पद्म पुरी' अंचल का परिवेश कथांकित किया गया है। जिसमें पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित गाँवो में आयी विकृति, आपसी फूट, वैमनस्य तथा असन्तोष से सामाजिक परिवेश दूषित हुआ है। लोभवृत्ति, पाखण्ड एवम् अनैतिकता की बढ़ती मनोवृत्तियों के कारण धार्मिक विद्रूपताएँ विकसित हुई हैं और इन्हीं कारणों से राजनीतिक विसंगतियों का जन्म भी हुआ है। लेखक ने अंचल के राजनीतिक षड्यंत्रों के कारणों पर भी व्यंग्य-प्रहार किया है- गाँव की खूबी यह है कि, कोई किसी का भला नहीं चाहता।''[1] 'चमेली' जो उपन्यास की नायिका है, और जो सामाजिक अव्यवस्था की शिकार बन चुकी है और कहती है- ''लोग मुझे अपना शिकार समझते है।''[2] कथाकार ने आंचलिक-ब्रजभाषा का भी प्रयोग किया है जिसमें लोक-कहावतें तथा मुहावरे भी अभिप्रेत व्यंग्यियों को अवसर प्रदान करते हैं। जैसे- ''आँखों में धूल झोंकते है साले, यात्रियों का माल चरते है सो उपर से, उनकी औरतों को घूरते है सो घाते मे....''[3] कथाकार भाषिक प्रहारों से वातावरण को विदग्ध करता है तथा व्याप्त विषमताओं को उजागर भी करता है।

इसी क्रम में 'रांगेय राघव' का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है जिनका सर्वाधिक चर्चित आंचलिक उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' नट जाति के कंजड़-समाज की सांस्कृतिक परम्पराओं को उजागर करता है। राजस्थान और ब्रज के सीमांचल पर स्थित 'बेर' नामक ग्राम में बसने वाली खानाबदोश 'नट' जाति के पेशे, नट समाज में व्याप्त अशिक्षा, रोजगार, राजनैतिक दबाब, सामाजिक विघटन, पारिवारिक क्लेश, शोषण, दमन, अन्याय एवम् अत्याचारों को पात्रों की सहज भूमिका के साथ व्यंग्यांकित किया गया है। शिल्पगत प्रयोग में विशिष्ट भूमिका का निर्वाह करते हुए यथार्थवादी दृष्टिकोण के साथ-साथ सूझ, चिन्तन, और लौकिकानुभूति की गरिमा इन्होंने सम्यक रूप से व्यक्त की है। लेखक नें नटों के सांस्कृतिक आचरण, रस्म-रिवाज, विश्वास-अन्धविश्वास तथा लोक-पर्वों का विस्तृत

---

१. उदयशंकर भट्ट: व्यक्ति और साहित्यकार, पृष्ठ-१३३

२. लोक-परलोक, पृष्ठ-८०

३. वही, पृष्ठ-११२

विवेचन प्रस्तुत किया है। सुखराम, प्यारी और कजरी के संवादो में कथाकार के व्यंग्य-कथ्य अपनी साभिप्रायी भूमिका का निर्वाह करते हैं। रांगेय राघव का एक अन्य उपन्यास 'काका' भी है जो कथानक और कथ्य की दृष्टि से अपेक्षाकृत शैथिल्य और सामान्य ही है। यह सामाजिक चित्रण है जिसमें मध्यकालीन विचारधाराओं के केन्द्रों की वास्तविकता को प्रकट किया गया है और समाज के अन्तर्विरोधों को स्पष्ट किया गया है।

देवेन्द्र सत्यार्थी कृत 'ब्रह्मपुत्र' आंचलिक परम्परा की एक सशक्त रचना है। जिसमें उन्होने नदी-पुत्रों के लोक-जीवन का पुराण प्रस्तुत किया है। दिसांगमुख ग्राम्यांचल के निवासियों का सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवम् आर्थिक जीवन बड़ी सूक्ष्मता के साथ रेखांकित हुआ है। स्वाधीनता के पूर्व की इस कथा में अंग्रेजी सत्ता द्वारा ब्रहम्पुत्रों के दमन की दर्दनाक कहानी है। उपन्यास की कथावस्तु उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना दिसांगमुख ग्राम्यांचल के निवासियों की अनवरत समस्याएँ।

'शिवप्रसाद सिंह' ने अपने उपन्यास 'अलग-अलग वैतरणी' में 'करैता' ग्राम के माध्यम से समूचे भारतीय गाँवों की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सास्कृतिक एवं आर्थिक समस्याओं को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है जिसमें आधुनिक भारतीय गाँवों की विभिन्न प्रवृत्तियों को सुन्दर व्यंग्य-कथ्यों के माध्यम से रेखांकित करने का प्रयत्न किया गया है। समाज और जीवन के टूटने का दृश्य स्पष्ट रूप से परिलक्षित किया गया है। सजीव चित्रों की सृष्टि में लेखक ने महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त कि हैं। सभी पात्र संपूर्ण कथानक को सजीवता प्रदान करते हैं। भोजपूरी संस्कृति की झलक के साथ लेखक ने बनारसीपन के लटकों का यथा संभव एवम् समावेश कर भाषा को अत्यन्त ही स्वाभाविक बना दिया है।

'राजेन्द्र अवस्थी' ने 'जंगल के फूल' में 'बस्तर' अंचल के जन-जीवन को रूपायित किया है। नायक 'सुलक' और नायिका 'महुआ' की प्रणय-गाथा का आधार है- गढ़बंगाल का 'घोटुल' किन्तु उनका कार्य-क्षेत्र समूचा बस्तर क्षेत्र। सुलक और महुआ घोटुलों के अंदर का प्रतिनिधित्व करते हैं। जिनकी संगठन शक्ति ने 'लाल मिर्च और आम की डाल' घर-घर भेजकर अधिकार हनन और शोषण के विरुद्ध आवाज

उठाई है। प्रगतिवादी चेतना के साथ आदिवासियों के विद्रोह का चित्रण इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। गोड़-जाति के सामाजिक एवम् सांस्कृतिक जीवन का यथार्थ चित्र सजीव हो उठा है। सभी पात्रों एवं घटनाओं में अंचल की समस्त विशेषताएँ सजीव और सवाक् हो उठी है। विश्वकल्याण एवम् नव-जागृति का स्वर इस कृति की विशेषता है। उपन्यास में आंचलिक शब्दों का सतर्कता पूर्वक प्रयोग लेखक ने किया है। वस्तु और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से सुन्दर और सफल प्रस्तुति है।

'पानी के प्राचीर' और 'जल टूटता हुआ' दोनों ही उपन्यास रामदरश मिश्र की बहुचर्चित कृतियाँ हैं। 'पानी के प्राचीन' में स्वतंत्रता प्राप्ति तक के भारतीय गाँव की प्रामाणिक गाथा प्रस्तुत है। गाँव और अंचल की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक यथार्थ की परतें परतों में धँसी हुई हैं। लेखक ने अपनी जमीन की सारी प्राकृतिक और सामाजिक शक्ति की भरपूर पहचान तथा उपयोग किया है। पर्वों, मेलों, लोकगीतों, नदियों, खेतों आदि का विधान-मात्र नहीं किया है, उनसे संवेदना की परतों तथा कथा-सूत्रों की सृष्टि भी की है। इस उपन्यास में गाँव की जिन्दगी की कथा तो है ही, उसमें एक गीतात्मक लय भी है जो उपन्यास को जगह-जगह काव्यात्मक सांकेतिकता तथा नाटकीय वक्रता प्रदान करती है। 'जल टूटता हुआ' में लेखक ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के गावों का जीवन्त एवम् विश्वसनीय चित्र उपास्थित किया है। कवि का कवि-हृदय उपन्यास में सर्वत्र दर्शनीय है। गरीबों, अशिक्षितों, पीड़ितों के चित्रण में लेखक की सहानुभूति अत्यधिक मार्मिकता के साथ प्रकट हुई है। वस्तुतः देश के उत्तर प्रदेश का ग्रामीण अंचल इस उपन्यास में स्वयं मूर्त पात्र के रूप में उपस्थित हुआ है। और अपनी सम्पूर्ण वेदनाओं, पीड़ाओं और मानसिक उल्लास तथा अवसाद के टूटते आदर्शों और मान्यताओं को प्रत्यक्ष रूपों में प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास के बहुत से पात्र जीवन्त पात्र, अविस्मरणीय होकर उभरे है। ये पात्र टूटते हुए मूल्यों और बढ़ती हुई विसंगतियों को उभारते हैं और परिवर्तन की झंझा के पद-संचारों का आभास देते हैं। सारी टूटती हुई व्यवस्था के ये पात्र गतिशील जीवन-प्रवाह को हृदयंगम करने योग्य रूप देते हैं।

इसी क्रम में विवेकी राय, शैलेश मटियानी, मनहर चौहान प्रभृति अन्य उपन्यासकारों ने भी अपनी विशिष्ट भूमिका का निर्वाह अपने-अपने आंचलिक उपन्यासों में किया है।

प्रस्तुत 'शोध-प्रबन्ध' में आंचलिक उपन्यासों की इतिवृत्तता पर अनावश्यक विवेचन प्रस्तुत न करके उनके व्यंग्यात्मक कथ्यों को ही अधिक विश्लेषित किया गया है। कथाकारों के व्यंग्य प्रायः समसामयिक परिवर्तित मूल्यों के तहत् अनेक सन्दर्भो में प्रस्तुत हुए हैं। पारिवारिक परिवेश में पिता-पुत्र का सम्बन्ध, भाई-बहन का सम्बन्ध, पति-पत्नी का सम्बन्ध, मां-बेटी का सम्बन्ध, बहु-सास का सम्बन्ध तथा संयुक्त एवम् खण्डित परिवारों में व्याप्त समस्याओं को उजागर किया गया है। सामाजिक परिवेश में मालिक-नौकर के सम्बन्धों को, बेमेल वैवाहिक सम्बन्धों को प्रशासक और प्रशासित के सम्बन्धों, अमीर-गरीब के सम्बन्धों को व्यंग्यात्मक कथ्यों के माध्यम से कचोटा गया है। समाज में व्याप्त आर्थिक विषमताएँ, टूटते परिवारों के अन्तर्द्वन्द, धार्मिक संकीर्णताओं से व्याप्त असंतुलन और शिक्षा के अभाव में संस्कार हीनता के अनेक प्रसंगों को व्यंग्यकारों ने अपने-अपने ढंग से कटाक्षित किया है। विशेषरूप से आर्थिक विषमताएँ, कुत्सित यौनसम्बन्धों, परिवारिक विसंगतियों, सामाजिक कुरीतियों तथा राजनीतिक भ्रष्टाचार को व्यंग्य का विशेष लक्ष्य बनाया गया है। व्यंग्यकारों ने जहां एक ओर अपने व्यंग्य वाक्यों से परिवेशमय व्याप्त विसंगतियों को उजागर किया है, वहीं दूसरी ओर भारतीय संस्कृति की उदात्तता एवम् राष्ट्रीयता के प्रति सहज लगाव को भी आंचलिक उपन्यासों में व्यक्त किया है। जैसे- "मै प्यार की खेती करना चाहता हूँ। आँसू से भीगी धरती पर प्यार के पौधे लहलहाएँगे। मैं साधना करूँगा, ग्रामवासिनी भारतमाता के मैले आँचल तले! कम-से-कम एक ही गाँव के कुछ प्राणियों के मुरझाये आठों पर मुस्कराहट लौटा सकूँ, उनके हृदय में आशा और विश्वास को प्रतिष्ठित कर सकूँ।"[१] गाँवो में व्याप्त पाश्चात्य प्रभान्विति के दुष्प्रभावों को व्यंग्याँकित करता हुआ कथाकार

१. मैला आंचल, पृष्ठ-३१२

कहता है- "साड़ी पहनने का ढंग, बोलने-बतियाने का ढंग, सब कुछ बदल गया है। तहसीलदार साहब की बेटी कमली अँगिया के नीचे जैसी छोटी चोली पहनती है, वैसी वह भी पहनती है। कान में पीतर के फूल हैं। फूल नहीं, फुलिया कहती है- 'कनपासा'। आँचल में चाबी का गुच्छा बाँधती है, पैर में शीशी का रंग लगाती है.... हाँ, खलासी जी बहुत पैसा कमाते है शायद।...."[1]

प्रस्तुत 'शोध-प्रबन्ध' आंचलिक उपन्यासों की परिभूमि में व्याप्त कथाकारों के व्यंग्य-प्रयोग और उनके स्थापित मूल्यों को जहाँ एक ओर स्पष्ट करता है, वहीं दूसरी और अपने व्यंग्य-कथ्यों से समाज की बोझिल आचार-संहिता पर वह प्रखर प्रहार भी करता है। प्रस्तुत 'शोध-प्रबन्ध' में यथा अवसर आंचलिक भाषाओं के विविध प्रयोग तथा व्यंग्य-कथ्यों के विभिन्न रूपों को भी व्याख्यायित किया गया है। शोषण और दमन के प्रति यह कथ्य कितना प्रासंगिक है- "जिले के जमींदारों और राजाओं की जमींदारियों का विनाश अवश्य हुआ। किन्तु हिन्दुस्तान के सबसे बड़े किसान यहीं निवास करते हैं।.... गुरूबंशी बाबू जमींदार नहीं, किसान है। दस हजार बीघे जमीन है, दो-दो हवाई जहाज रखते हैं।... पर यह बात भी सच्ची है कि वे जमींदार नहीं।... यहाँ पाँच सौ बीघेवाले किसान तृतीय श्रेणी के किसान समझे जाते हैं और गाँव पर इन्हीं किसानों का राज है। भूमिहीनों की विशाल जमात! जगती हुई चेतना!.... जमींदारी-उन्मूलन के बाद भी हर साल फसल कटने के समय एक-डेढ़ सौ लड़ाई-दंगे और चालीस-पचास कत्ल होते रहें तों फिर से जमीन की बन्दोबस्ती की व्यवस्था की गयी।.... सारे जिले में गत तीन वर्षों से विशाल आँधी चल रही है।"[2] इसी प्रकार जमींदारो और ठाकुरों के स्वार्थी प्रवृत्तियों तथा षड्यंत्रो को उजागर करता हुआ यह कथ्य कितना साभिप्राय है-"जिले भर में किसानों और भूमिहीनों में महाभारत मचाहुआ है। सिर्फ भूमिहीन नहीं, डेढ़ सौ बीघे के मालिकों ने भी दूसरे बड़े किसानों की जमीन पर दावे किये हैं!....हजार बीघेवाला भी एक इंच जमीन छोड़ने को राजी नहीं।"[3]

---

१. मैला आंचल, पृष्ठ-१६८

२. परती: परिकथा, पृष्ठ-२४

३. वही, पृष्ठ-२४

व्यंग्य को अधिक स्वाभाविक एवम् प्रभावक बनाने के लिए लोक-भाषा की कहावतों, मुहावरों, ग्रामीण रूढ़ शब्दों आदि का प्रचुर प्रयोग किया गया है, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी आदि के मिश्रित शब्दों के साथ आंचलिक भाषाओं के शब्द भी व्यंग्य-कथ्यों को प्रभावित करते है, जिनमें भोजपुरी, मैथिली, ब्रजभाषा, अवधी, राजस्थानी, मेवाती, कुमायुंनी, पंजाबी तथा सिन्धी भाषाओं के लोक-प्रचलित शब्द भी सहजता के साथ साम्मिलित हुए हैं। 'नागार्जुन' और 'रेणु' के उपन्यासों में बिहार के परिवेश में परिव्याप्त अंग्रेजी और पूर्वी हिन्दी के शब्दों का बाहुल्य देखा जा सकता है। कहीं-कहीं ग्राम्यँाचलों में अप्रचलित शब्दों का प्रयोग भी कथानक को अधिक सहज बनाने में सफल हुआ है। कुछ मुहावरे स्वयं व्यंग्य के अभिप्रेत कथ्यों को स्पष्ट करते हैं; यथा- आदमखोर, मांस की गंध, शहर की हवा, हर बात का रोना, रखैल बनकर रहना, जूती पिटा मुँह, छलनी-छलनी जिन्दगी, साँप-छछुंदर खेल आदि मुहावरों के भाषिक प्रयोग कथ्य को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। कुछ कथाकारों के व्यंग्य-कथ्यों में जनपदीय संस्कृतियों की झाँकियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। जैसे - "नगारे की आवाज पर रात थरथरा रही थी। ढोलक और झाल से होड़ लेता हुआ चौताल गाँव की गलियों में उफना रहा है।.....'नंगी धरती का किसानों द्वारा चीरा जाना', 'चेहरों से अंधकार का पुतना', 'भूख का लोटना' तथा 'मन के दर्द का तैरना' आदि प्रयोग लेखक की भाषिक विशिष्टता एवम् क्षमता के परिचायक कहे जा सकते हैं"[1]

अन्ततः कहा जा सकता है, कि व्यंग्य-विधा ने हिन्दी-साहित्य को एक नया मोड़ प्रदान किया है जहाँ कथ्य-विश्लेषण की अनेक संभाव नाएँ उजागर हुई हैं; अपने बहुआयामी प्रभावों के कारण स्वतंत्र विधा के रूप में भी व्यंग्य को स्वीकारा जा रहा है तथा उसके कारण भाषिक अभिव्यंजना की क्षमताओं में भी चतुर्दिक वृद्धि हुई है। प्रस्तुत 'शोध-प्रबन्ध' के माध्यम से आंचलिक उपन्यासों की व्यंग्य-चेतना पर

---

१. डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय, 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यास', पृष्ठ-१७३

यथा सम्भव एवम् यथा-प्राप्य सामग्री को विश्लेषित तथा विवेचित किया गया है।

व्यंग्य-लेखन और आंचलिक उपन्यास दोनों का ही अपना-अपना महत्व है किन्तु जहाँ आंचलिक कथानकों की सहज भाव-भूमि में व्यंग्य-कथ्यों के साभिप्रायिक प्रयोग समाविष्ट हुए हैं, वहाँ अभिव्यंजना की अनेक सम्भावनाओं के मार्ग दृष्टिगत् हुए हैं। विस्तृत विवेचनाओं एवम् विश्लेषणों के आधार पर प्रस्तुत 'शोध-प्रबन्ध' में इन तथ्यों को विश्लेषित किया गया है।